ताने-बाने में बसी कला और कौशल

सांस्कृतिक रूप से समृद्ध जनपद अमरोहा उत्तर प्रदेश का एक ऐसा नगर है, जो भौगोलिक नक्शे पर भले ही बहुत बड़ा नहीं है, परंतु इसकी स्मृतियों, साहित्यिक व सांस्कृतिक धरोहरों की गहराइयां इतनी विराट हैं कि वहां से निकले लोग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के साहित्य, सिनेमा और भावनात्मक चेतना में अपना चिरस्थायी स्थान रखते हैं। यहां की मिट्टी में शब्द, राग और रूहानियत का गहरा रंग घुला है। अमरोहा में जन्मे लेखक, फिल्म निर्देशक कमाल अमरोही और उनकी शरीके हयात 'ट्रेजेडी क्वीन' अभिनेत्री मीना कुमारी से पूरा संसार परिचित है। उर्दू अदब में सबसे चर्चित और पसंद किए जाने वाली एक शख्सियत जॉन एलिया का जन्मस्थान भी अमरोहा है। उनके कलाम से नई पीढ़ी आज भी उतना ही प्रभावित है, जितना उनके दौर में लोग उन्हें पसंद करते थे।

डॉ. पारुल तोमर
नई दिल्ली

अमरोहा की गलियां उर्दू तहजीब का खजाना हैं, जहां अब भी पुरानी हवेलियों, इत्र, कागज और किताबों की दुकानों से अदब की खुशबू आती है। इसी अमरोहा जनपद के नौगावां सादात क्षेत्र के एक छोटे से गांव मखदूमपुर के हथकरघों में बुना हर धागा जैसे अपनी एक अलग यात्रा पर निकल पड़ा है। इसकी संकरी गलियों में सुबह की किरणें जैसे ही उतरती हैं, हथकरघों की खट-खट वातावरण में गूंजने लगती है। यह आवाज सिर्फ कपड़ा बुनने की नहीं, बल्कि सदियों से चली आ रही एक सांस्कृतिक धड़कन की आवाज है। यहां के बुनकर, जिनकी उंगलियां धागों को मानो सांस लेने की लय देती हैं। ये कपास, रेशम और जरी के तानों-बानों में पूरे अमरोहा की पहचान बुनते हैं। बुनकरों के हाथों में बारीकी और डिजाइन का अद्भुत संगम है। ये रंग-बिरंगे गलीचे, चादर आदि को इस तरह कुशलता से बुनते हैं, जैसे कोई चित्रकार अपने कैनवास पर रंग भर रहा हो। फूल-पत्तियों के पैटर्न, ज्यामितीय आकृतियां और पारंपरिक नक्शे इनको अद्वितीय पहचान देते हैं, जो कभी गांव की चौपाल और घर आंगन में बिछी चारपाई का हिस्सा बनते हैं, तो कभी हजारों मील दूर विदेश के किसी आलीशान ड्राइंग रूम के फर्श की शान बढ़ाते हैं। आज देश-विदेश में अमरोहवी गलीचे, चादरें, दोहरें, कुशन आदि घर-घर की पसंद बन चुके हैं।

7 अगस्त 1905 को जब स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत हुई, तब देशवासियों ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर हथकरघा उद्योग को पुनः जीवन देना शुरू किया। यह एक सांस्कृतिक और आर्थिक विद्रोह था, जिसमें करघे पर बनी खादी सिर्फ कपड़ा नहीं, बल्कि आत्मबल का प्रतीक बन गई थी। हथकरघा उद्योग महिलाओं के लिए भी आत्मनिर्भरता का माध्यम बनकर उभरा है। गांवों की असंख्य महिलाएं, जो कभी घर की देहरी तक सीमित थीं, आज हथकरघे के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ रही हैं। वे घर पर रहकर ही अपनी कला से रोजगार कमा रही हैं, बच्चों को पढ़ा रही हैं, परिवार चला रही हैं।

संस्कृति व परंपरा

हथकरघा समय, मेहनत, कौशल, संस्कृति और परंपरा का यह जीवंत दस्तावेज है, जिसमें गांव-गांव की सांसें, रंग और लय बसी हुई है। लकड़ी के चौखटे पर बैठा बुनकर जब पैडल दबाता है और शटल को बारी-बारी से इधर-उधर घुमाता है, तो उसके हाथों की गति में केवल कपड़ा नहीं, बल्कि पीढ़ियों का अनुभव और स्मृति गुंथने लगती है। एक-एक धागा जैसे किसी पुरानी कहानी का अक्षर होता है और कपड़ा उसका पूरा कथानक। आज भी गांव के मिट्टी के आंगन में रखा हथकरघा अक्सर घर का केंद्र होता है। बच्चे उसके आसपास खेलते हैं, महिलाएं धागे की पूनियां बनातीं। करघे की खट-खट आवाज की मधुर धुन अपनी ओर खींचती है। यह धुन, केवल कपड़ा नहीं, बल्कि घर का चूल्हा-चौका, बच्चों की पढ़ाई और भावी जीवन का सपना भी बुन रही होती है। यह केवल रोजगार का साधन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का प्रतीक भी है। बुनकर जानता है कि उसके धागों से बना कपड़ा न केवल तन को ढकेगा, बल्कि परंपरा, मेहनत और स्थानीय पहचान को भी दुनिया तक पहुंचाएगा। हर डिजाइन, हर पैटर्न किसी खास क्षेत्र का परिचय पत्र है। चाहे वह कश्मीर की पश्मीना हो, बनारस की जरी या आंध्र की इक्कत। हथकरघे के धागों की तरह जीवन भी तभी सुंदर बनता है, जब उसे धैर्य और प्रेम से बुना जाता है। वरना उलझे धागों की तरह उलझनें ही रह जाती हैं। यह केवल कपड़े का ताना-बाना नहीं, बल्कि मानवता के बुनियादी मूल्यों का भी करघा है, जो हमें जोड़ता है, संवारता है और हमें हमारी जड़ों से बांधता है।

आज मशीनों की तेज रफ्तार और बाजार की आर्टिफिशियल चमक-धमक के आगे यह धीमा, मेहनत-भरा शिल्प दम तोड़ रहा है। जिस कपड़े में कभी किसान का श्रमजल, बुनकर के हाथों की महक और रंगरेज की आत्मा बसती थी, उसकी जगह अब सस्ते मशीन-निर्मित सिंथेटिक कपड़ों ने बाजार पर कब्जा कर लिया है। कच्चा माल महंगा और बिक्री के रास्ते सीमित हैं, लेकिन परिवर्तन की आहट सुनाई दे रही है। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, सरकारी योजनाओं और डिजाइन में आधुनिकता के प्रयोग से ये बुनकर वैश्विक बाजार में अपनी जगह बना रहे हैं। गलीचे, बैडशीट आदि के निर्यात ने मखदूमपुर को मानचित्र पर चमका दिया है, जो गांव कभी सिर्फ स्थानीय बाजार तक सीमित था, आज उसकी पहचान अंतर्राष्ट्रीय मंच पर है।

भले ही अमरोहा का हथकरघा विश्व में अपना रंग बिखेर रहा है, लेकिन यदि हमने इस उद्योग को बचाने की कोशिश नहीं की तो केवल करघे का पहिया ही नहीं रुकेगा, बल्कि रुक जाएगी वह सांस्कृतिक धारा, जो हमारी मिट्टी की महक को दुनिया तक पहुंचाती रही है। हथकरघे का संरक्षण असल में केवल कारीगरों की आजीविका का प्रश्न नहीं, बल्कि अपनी विरासत और अपनी जड़ों को बचाने का संकल्प है।

आर्ट गैलरी

अमृता शेरगिल की पेंटिंग 'सुमैर'

इस पेंटिंग को अमृता शेरगिल ने 1936 में बनाया था। इसका शीर्षक है, सुमैर। 'सुमैर' उनकी कलात्मक परिपक्वता का एक शानदार उदाहरण है। यह पेंटिंग उनकी चचेरी बहन सुमैर का एक संवेदनशील और मनमोहक पोर्ट्रेट है। इस कृति में अमृता ने यूरोपीय पोस्ट-इंप्रेशनिस्ट तकनीकों को भारतीय सौंदर्य शास्त्र के साथ मिलाया है।

सुमैर को एक हरे रंग की साड़ी में दर्शाया गया है, जिसकी जीवंतता पृष्ठभूमि के लाल और भूरे रंग के साथ एक प्रभावशाली विरोधाभास पैदा करती है। उनके चेहरे पर चिंतनशील और उदासी के भाव हैं, जो उनकी आंतरिक भावनाओं को बड़ी संजीदगी से व्यक्त करते हैं।

अमृता के बारे में

अमृता शेरगिल भारतीय उमराव सिंह और हंगेरियन मां एनटॉयनेट शेरगिल की बेटी थीं। वो 30 जनवरी 1913 को हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में पैदा हुईं। उनके पिता संस्कृत और फारसी के विद्वान और मां ओपेरा गायिका थीं। कला के प्रति अमृता के रुझान को देखते हुए उनके माता-पिता उन्हें पेरिस ले गए। वहां उन्होंने पेंटिंग की औपचारिक शिक्षा ली। 1934 में पेरिस से भारत लौटने के बाद, अमृता शेरगिल ने अपनी कला को भारतीय वास्तविकता के करीब लाने का प्रयास किया। 'सुमैर' उसी दौर का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

-फीचर डेस्क

रंगमच का शाश्वत उद्देश्य मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना

'लोके उपभोग्यं नाट्यं भवतु।' अर्थात नाटक संसार के लिए आनंद का साधन बने। संसार के किसी भी हिस्से में, किसी भी काल में जब नाट्य विधा का आरंभ हुआ होगा, तो उसका मूल उद्देश्य क्या रहा होगा? क्या नाटक का मूल उद्देश्य केवल संदेश देना रहा होगा या किसी विचारधारा को प्रस्तुत करना? रंगमंच का मूल तो अपने दर्शक की आत्मा से जुड़कर रसों की निष्पत्ति करना है, उसके भीतर के वे सारे भाव, जो समाज द्वारा प्रदूषित कर दिए गए हैं, उनकी शुद्धि करना है।

लव तोमर
रंगकर्मी

हाल के वर्षों में नाटक लोगों की राजनीतिक पसंद-नापसंद और उनके निजी एजेंडों पर अधिक निर्भर हो गया है। यह पूरे देश के नाटकों में अनुभव किया जा सकता है। चिंता की बात यह है कि दर्शकों की घटती संख्या पर न तो कोई ध्यान दे रहा है, न ही उसके समाधान पर विचार कर रहा है। नाटक का मूल उद्देश्य केवल राजनीतिक टिप्पणी या सामाजिक संदेश देना मात्र नहीं है। यदि यह साथ में हो पाए तो बहुत अच्छा, लेकिन मूल तो अपने दर्शक के भीतर छिपे भावों को उत्पन्न करना और उसकी आत्मा को स्पर्श करना है।

भारतमुनि का कहना है, "नाट्यं भिन्नरूपं लोकवृत्तानुकीर्तनम्।"अर्थात नाटक मनुष्य के जीवन का अनुकरण है। वहीं अरस्तू का कहना है, नाटक किसी क्रिया का अनुकरण है, जिसका उद्देश्य करुणा और भय के माध्यम से आत्मशुद्धि करना है। दो महान व्यक्ति, जो समय और संस्कृति में पूरी तरह अलग हैं, दोनों एक ही बात कह रहे हैं, "पहले भाव को छुओ, विचार अपने आप जन्म लेंगे।" आजकल नाटकों में हम देखते हैं कि अभिनेता अपने नाटक के लेखक या निर्देशक के निजी विचारों, उनकी राजनीतिक पसंद-नापसंद को अलग-अलग तरीकों से अभिव्यक्त कर रहे होते हैं। इस प्रकार भाव पर विचार हावी हो जाता है।

कैसे खो रहा है आधुनिक रंगमंच रस

प्रासंगिकता की दौड़ में रंगमंच ने अनुभूति को पीछे छोड़ दिया है। आज अनेक नाटक जीवन को दिखाते नहीं, बल्कि समझाते हैं। वे अनुभव की जगह विचार प्रस्तुत करते हैं।

चार कारण जिनसे रस मिटता है –

- थीसिस-ड्रामा- जहां नाटक पहले से ही निष्कर्ष लेकर चलता है।
- उपदेशात्मक लहजा- जहां पात्र मनुष्य नहीं, प्रवक्ता बन जाते हैं।
- विचार-प्रधान लेखन- जहां क्रिया के स्थान पर कथन होता है।
- एक-रस शैली- जहां न लय है, न मौन, न विरोधाभास- केवल सूचना।

दर्शक नाटक से जानकर लौटते हैं, जीकर नहीं और बिना अनुभूति का नाटक, नाटक नहीं- प्रचार है। हमें अपनी कहानियों को कहने की कला के अतीत की ओर लौटना होगा। देखना होगा कि किस तरह कालिदास और शेक्सपियर जैसे महान रचनाकारों ने श्रृंगार, करुण, भय, वीर आदि रसों को साधा या ग्रीक त्रासदियों में कैसे नैतिकता नाटक के अंत में स्वत: प्रकट हो जाती है। या फिर आधुनिक नाटककारों- मोहन राकेश, गिरीश कर्नाड और विजय तेंदुलकर ने अपने पात्रों के जटिल जीवन के माध्यम से भाव उत्पन्न किए, जिन्हें दर्शक अनुभव करता है। यदि कोई संदेश होता है, तो वह स्वत: प्रकट हो जाता है। संदेश को रस के माध्यम से आना चाहिए, न कि रस के स्थान पर। थिएटर का उद्देश्य सही या गलत का निष्कर्ष निकालना नहीं, बल्कि भाव उत्पन्न करना है। भाव के उत्पन्न होने पर दर्शक स्वयं अपने नैतिक निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होगा। रंगमच का शाश्वत उद्देश्य है, मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना। साझा अनुभव, साझा सांस और साझा हृदय।